भगवान् महावीर का जीवन और दर्शन

– डॉ. सागरमल जैन

भगवान् महावीर का जन्म बौद्धिक जागरण के युग में हुआ था। उस युग में भारत में हमारे औपनिषदिक ऋषि नित-नूतन चिन्तन प्रस्तुत कर रहे थे। महावीर और बुद्ध भी उसी वैचारिक क्रांति के क्रम में आते हैं। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि महावीर की विशेषता क्या थी ? बुद्ध की विशेषता क्या थी ? यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि कोई भी महापुरुष अपने युग की परिस्थितियों की पैदाइश होता है। महावीर और बुद्ध जब इस भूमण्डल पर आये उनके सामने दो प्रकार की समस्याएँ थीं। एक ओर वैचारिक संघर्ष था दूसरी ओर मनुष्य अपनी मानवीय गरिमा और मूल्यवत्ता को भूलता जा रहा था। महावीर ने जो मुख्य कार्य किया वह यह कि उन्होंने मनुष्य को उसकी विस्मृत महत्ता या गरिमा का बोध कराया। अगर महावीर के जीवन दर्शन को दो शब्दों में कहना हो तो हम कहेंगे विचार में उदारता और आचार में कठोरता।

वैचारिक क्षेत्र में महावीर की जीवन दृष्टि जितनी उदार, सहिष्णु और समन्वयवादी रही, आचार के क्षेत्र में महावीर का दर्शन उतना ही कठोर रहा। महावीर के जीवन के सन्दर्भ में हमारे सामने एक बात बहुत ही स्पष्ट है, वह यह कि वह व्यक्ति राज परिवार में, सम्पन्न परिवार में जन्म लेता है लेकिन फिर भी वह उस सारे वैभव को ठुकरा देता है और श्रमण जीवन अंगीकार कर लेता है। आखिर ऐसा क्यों करता है ? उसके पीछे क्या उद्देश्य है ? क्या महावीर ने यह सोचकर संन्यास ले लिया कि श्रमण या संन्यासी होकर ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती ? ऐसी बात नहीं थी, क्योंकि महावीर ने स्वयं ही आचारांग में कहा है **"गामे वा रण्णे वा"** धर्म साधना गांव में भी हो सकती है और अरण्य में भी हो सकती है। फिर महावीर ने संन्यास का मार्ग क्यों चुना ? उत्तर स्पष्ट है **"समिच्च लोए खेयन्ने पवेइए"** समस्त लोक की पीड़ा को जानकर और जगत् को दुःख और पीड़ा से मुक्त करने के लिए महावीर ने संन्यास धारण किया। वे अपने वैयक्तिक जीवन से एक ऐसा आदर्श प्रतिष्ठित करना चाहते थे, जिसे सम्मुख रखकर के व्यक्ति मानवता के कल्याण की दिशा में आगे बढ़ सकता है। सम्भवतः प्रश्न यह हो सकता है कि लोकमंगल और लोककल्याण के लिए श्रमणत्व क्यों आवश्यक है ? मित्रों ! हम आज के युग में भी देखते हैं कि जब तक व्यक्ति कहीं भी अपने निजी स्वार्थों से और वैयक्तिक तथा पारिवारिक कल्याण से जुड़ा होता है तब तक वह सम्यक् रूप से लोककल्याण का सम्पादन नहीं कर सकता। चाहे आप उसको लोककल्याण अधिकारी क्यों नहीं बना दें क्या वह लोककल्याण कर सकेगा ? व्यक्ति जब तक अपने स्वार्थों एवं हितों से ऊपर नहीं उठ जाता है, तब तक वह लोकमंगल का सृजन नहीं कर सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकमंगल के सृजन के लिए निजी सुखाकांक्षाओं से, स्वार्थों से, अहम् से, मैं और मेरे के भाव से ऊपर उठना आवश्यक होता है। इसीलिए चाहे वे महावीर हों या चाहे बुद्ध हों या अन्य कोई, लोकमंगल के लिए तो अपने आपको पूरी तरह से लौकिक ऐषणाओं, वासनाओं और कषायों से ऊपर उठाना होगा। ममत्व और मेरेपन के घेरे को समाप्त करना होगा।

महावीर के सम्बन्ध में जो बात मैं आपके सामने प्रस्तुत करने जा रहा हूँ उसमें मुख्य है महावीर की वैचारिक उदारता। समाज में अगर कोई संघर्ष है तो उस संघर्ष का समाधान वैचारिक उदारता के बिना सम्भव नहीं है। विचारों के प्रति भी ममत्व या आग्रह को समाप्त करना होगा। इसलिए महावीर ने तो कभी यह भी नहीं कहा कि मैं किसी नवीन धर्म का प्रवर्तन कर रहा हूँ न कोई नवीन सिद्धान्त तुम्हें दे रहा हूँ। महावीर ने विनय भाव से यही कहा कि -- "**समियाए आयरिए धम्मे पवेइए**" आर्यजनों के समभाव में धर्म कहा है। महावीर की इस विनम्रता और उदारता को समझिये और उससे प्रेरणा लिजिये। आचारांग में वे कहते हैं --

> *"जे अरहन्ता भगवन्ता पडिपुन्ना, जे वा आगमिस्सा, जे वा आसि ते सव्वे इमं भासंति, परूवेंति सव्वे सत्ता न हन्तव्वा, एस धम्मो सुद्धो णिच्चो सासयो।"*

जो अरहंत हो चुके हैं, जो होंगे और जो हैं, वे सब एक ही बात कहते हैं कि किसी भी प्राणी को दुःख या पीड़ा नहीं देना चाहिए। यही शुद्ध नित्य और शाश्वत धर्म है।

इसलिए मेरा निवेदन है कि महावीर को किसी धर्म विशेष के साथ बाँधे नहीं। उनको किसी एक धर्म और सम्प्रदाय के साथ बाँध करके हम उनके साथ न्याय नहीं कर पायेंगे।

मुझे आश्चर्य लगता है कि जब विद्वान् यह कहते हैं कि भगवान् महावीर जैन धर्म के प्रवर्तक हैं। मित्रों विचार करें। यह जैन शब्द कब का है ? छठी शताब्दी के पहले हमें "**जैन**" शब्द का कहीं उल्लेख ही नहीं मिलता।

जब भी महावीर से कोई उनका परिचय पूछता था तो वे कहते थे -- मैं श्रमण हूँ, निर्ग्रन्थ हूँ। निर्ग्रन्थ कौन हो सकता है ? महावीर कहते थे "जे मणं परिजाणइ से निग्गंन्थे -- जो मन का द्रष्टा है वही निर्ग्रन्थ है। महावीर अपने आपको किसी घेरे में बांध करके खड़ा होना ही नहीं चाहते थे। जो भी मन का द्रष्टा है, जो अपने विचारों का, विकारों का और अपनी वासनाओं का साक्षी है, द्रष्टा है वही निर्ग्रन्थ है। अपने हृदय की ग्रन्थि को देख लेना, यही निर्ग्रन्थ की पहचान है। उनकी साधना यात्रा प्रारम्भ होती थी अन्तरदर्शन से, अन्दर झांकने से। यही उनका आत्मदर्शन था। महावीर ने जो सिखाया वह यही कि व्यक्ति अपने अन्दर देखें, अपने आपको परखे। क्योंकि यही वह मार्ग था जो कि व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक विकास की दिशा में ले जाता है। महावीर ने सम्पूर्ण जीवन में जो कुछ कहा और जो कुछ किया उसका मूलभूत सार तत्त्व यही है। महावीर जीवन पर्यन्त यही कहते रहे -- ज्ञाता और द्रष्टा बनो। यही वह मूल आधार है जहाँ स्थित होकर आत्म विश्लेषण के द्वारा हम अपनी और समाज की सारी समस्याओं को समझ सकते हैं। आज हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम अपने भीतर के वासनाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और कषायों के कूड़े–कचरे को न देखकर, अपितु उस पर सुनहला आवरण डाल करके अपना जीवन व्यवहार चलाना चाहते हैं। इसके कारण न केवल हमारा जीवन विषाक्त बनता है अपितु सामाजिक परिवेश भी विषाक्त बनता है। महावीर ने कहा था कि जब तक तुम अपने आपको वासनाओं और कषायों से ऊपर नहीं उठा सकते तब तक तुम लोकमंगल की साधना नहीं कर सकते।

हम जानते हैं कि महावीर के जीवन के साढ़े बारह वर्ष कठोर साधना के वर्ष हैं। उन वर्षों में उन्होंने कोई उपदेश नहीं दिया। जैनों की एक परम्परा तो यहाँ तक कहती है कि उसके बाद भी भगवान् बोले नहीं। लेकिन आज हम सब अधिक मुखर हो गये हैं। हम बोलते अधिक हैं और करते कम हैं। महावीर ने बोला बहुत अल्प और किया बहुत अधिक। महावीर का दर्शन था कि यदि आप अपने जीवन को परिष्कारित कर लेते हैं तो आपका जीवन ही बोलेगा। ऐसे व्यक्ति के लिए शाब्दिक उपदेश देने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसकी जीवन शैली ही उपदेश है। आज हमारा दुर्भाग्य यह है कि हमारा जीवन नहीं बोलता है, हम मात्र उपदेश देते हैं। महावीर के जीवन और दर्शन में कितनी व्यापकता एवं उदारता थी, इसकी कल्पना हम महावीर को जैन धर्म के चौखटे में खड़ा करके नहीं देख सकते। बुद्ध और महावीर दोनों के साथ सम्भवतः यह अन्याय हुआ है कि एक वर्ग विशेष ने जब उन्हें अपना लिया तो दूसरे वर्ग ने उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। अगर हम जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्राचीनतम स्वरूप को देखें तो ज्ञात होगा कि महावीर और बुद्ध भारत की उसी ऋषि परम्परा के अंग है, जिनके उल्लेख वैदिक परम्परा के उपनिषदों में जैन परम्परा के ऋषिभाषित और उत्तराध्ययन में तथा बौद्ध परम्परा के थेरगाथा और सुत्तनिपात में मिलते हैं। मुझे अपने अध्ययन के दौरान ऋषिभाषित के अध्ययन का सौभाग्य मिला है। प्राकृत का यह ग्रन्थ, जो किसी समय जैन आगम साहित्य का एक भाग था, शताब्दियों से जैनों में भी उपेक्षित बना रहा। जहाँ उसमें निर्ग्रन्थ परम्परा के पार्श्व और महावीर के वचनों का संकलन है, वहीं उसमें औपनिषदिक परम्परा के नारद, अरुण, उद्दालक और भारद्वाज आदि का, बौद्ध परम्परा के वज्जीपुत्त और सारिपुत्त, महाकाश्यप आदि का तथा अन्य श्रमण परम्पराओं के मंखलीगोशाल, संजय वेलट्ठीपुत्त आदि का भी उल्लेख है। उन सबके लिए 'अर्हत्' इसी विशेषण का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थकार के लिए महावीर भी अर्हत् ऋषि हैं तो उद्दालक आदि भी अर्हत् ऋषि हैं।

यदि आप उस ग्रन्थ को पढ़े तो आपको यह स्पष्ट लग सकता है कि वह ग्रन्थ किसी परम्परा के आग्रह से जुड़ा हुआ नहीं है। महावीर ने जो वैचारिक उदारता दी थी उसी का परिणाम यह ग्रन्थ था। सम्भवतः जो दुर्भाग्य प्रत्येक महापुरुष के साथ होता है, वही महावीर के साथ भी घटित हुआ। कुछ लोग उनके आसपास घेरा बना करके खड़े हो गये और इस प्रकार वे समाज के अन्य वर्गों से कट गये। अगर हम आज भी भारतीय चिन्तन की उदार चेतना को सम्यक् रूप से कुछ समझना चाहते हैं तो मैं आपसे कहूँगा कि हमें उपनिषदों ऋषिभाषित और थेरगाथा जैसे ग्रन्थों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन करना चाहिए। मित्रों अगर बौद्ध यह समझते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहें कि थेरगाथा के सारे "थेर" बौद्ध थे और जैन यह समझते रहें कि "इसिभासियाइं" के सारे ऋषि जैन थे, तो इससे बड़ी भ्रान्ति और कोई नहीं होगी। थेर गाथा में वर्द्धमान थेर हैं और यह वर्द्धमान थेर लिछवी पुत्र हैं यह बात उसकी अट्ठकथा कह रही है, तो क्या हम यह माने कि वर्द्धमान बुद्ध का शिष्य या बौद्ध था। मित्रों हमारा जो प्राचीन साहित्य है वह उदार और व्यापक दृष्टि से युक्त है और महावीर ने जो हमको जीवन दृष्टि दी थी -- वह दृष्टि थी वैचारिक उदारता की।

आपको मैंने अपने वक्तव्य के पूर्व में संकेत किया था कि महावीर और बुद्ध जिस काल में जन्में थे वह दार्शनिक चिन्तन का काल था। अनेक मत-मतांतर, अनेक दृष्टिकोण, अनेक विचारधारायें उपस्थित थीं। महावीर और बुद्ध दोनों के सामने यह प्रश्न था, मनुष्य इन विभिन्न दृष्टिकोणों में किसको सत्य कहे। महावीर ने कहा कि सभी बातें अपने-अपने दृष्टिकोण या अपेक्षा भेद से सत्य हो सकती है, इसलिए किसी को भी गलत मत कहो जबकि बुद्ध ने कहा कि तुम इन दृष्टियों के प्रपंच में मत पड़ो, क्योंकि ये दुःख विमुक्ति में सहायक नहीं हैं।

एक ने इन विभिन्न दृष्टियों से ऊपर उठाने की बात कही तो दूसरे ने उन दृष्टियों को समन्वय के सूत्र में पिरोने की बात कही। सूत्रकृताङ्गसूत्र में महावीर कहते हैं --

"सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वयं।
जे उ तत्थ विउस्संति संसारे ते विउस्सिया"।।

जो अपने-अपने मत की प्रशंसा करते हैं और दूसरे के मतों की निन्दा करते हैं और जो सत्य को विद्रूपित करते हैं वे संसार में परिभ्रमण करेंगें।

आज हमारे दुर्भाग्य से देश में धर्म के नाम पर संघर्ष हो रहे हैं। क्या वस्तुतः संघर्ष का कारण धर्म है ? क्या धर्म संघर्ष सिखाता है ! मित्रों मूल बात तो यह है कि हम धर्म के उत्स को ही नहीं समझते हैं, हम नहीं जानते हैं कि वस्तुतः धर्म क्या है ? हम तो धर्म के नाम पर आरोपित कुछ कर्मकाण्डों, कुछ रूढ़ियों या कुछ व्यक्तियों से अपने को बांध करके यह कहते हैं यही धर्म है। महावीर ने इस तरह के किसी भी धर्म का उपदेश नहीं दिया। महावीर ने कहा था कि **"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ"** धर्म तो शुद्ध चित्त में रहता है। धर्म "उजुभूयस्स" चित्त की सरलता में है। वस्तुतः जहाँ सरलता है, सहजता है, वहीं धर्म है। धर्म है क्या ? महावीर ने कहा था कि **"समियाए आयरिए धम्मे पव्वइये"** समभाव में समत्व की साधना में ही आर्य जनों ने धर्म कहा है। महावीर कहते हैं कि जहाँ भी समत्व की साधना है, जहाँ भी व्यक्तियों को तनाव से मुक्त करने का कोई प्रयत्न है, वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन से तनाव और संघर्ष को समाप्त करने का कोई प्रयास है, वहीं धर्म है। ऐसा धर्म चाहे आप उसे जैन कहें, बौद्ध कहें, हिन्दू कहें वह धर्म, धर्म है और सभी महापुरुष धर्म के इसी उत्स का प्रवर्तन करते हैं।

महावीर का जो जीवन और दर्शन है वह हमारे सामने इस बात को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है कि हम वैयक्तिक जीवन में वासनाओं से ऊपर उठें, अपने विकारों पर नियंत्रण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयत्न करें और सामाजिक जीवन में लोकमंगल की साधना करें। वैयक्तिक जीवन में वासनाओं से शुद्धि और सामाजिक जीवन में संघर्षों का निराकरण -- ये दो बातें ऐसी हैं जो महावीर के जीवन और दर्शन को हमारे सामने सम्यक् रूप से प्रस्तुत करती है।

अनेकान्त का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से इस बात को बताता है कि व्यक्ति अपने को आग्रह के घेरे में खड़ा न करें। सत्य का सूरज किसी एक के घर को प्रकाशित करेगा और दूसरे के घर को प्रकाशित नहीं करेगा, यह नहीं हो सकता। सूरज का काम है प्रकाश देना, जो भी अपना दरवाजा, अपनी छत, खुली रख सकेगा उसके यहाँ सूर्य का प्रकाश आ ही जायगा। मित्रों ! यही स्थिति सत्य की है। यदि आपके मस्तिष्क का दरवाजा या खिड़की खुली है तो सत्य आपको आलोकित करेगा ही। लेकिन अगर हमने अपने आग्रहों के दरवाजों से अपनी मस्तिष्क की खिड़की को बन्द कर लिया है तो सत्य का प्रकाश प्रवेश नहीं करेगा। सत्य न तो मेरा होता है न पराया ही। वह सबका है और वह सर्वत्र हो सकता है। "मेरा सत्य" यह महावीर की दृष्टि में सबसे बड़ी भ्रान्ति है। आचार्य सिद्धसेन महावीर की स्तुति करते हुए कहते हैं कि -- "**भद्दं मिच्छादंसण समूह मइयस्स अमयसारस्स**" हे प्रभु मिथ्या दर्शन समूह रूप अमृतमय आपके वचनों का कल्याण हो"। महावीर का अपना कुछ भी नहीं है-- जो सबका है वही उनका है और अगर हम दार्शनिक गहराई में न जायें और महावीर के दर्शन को जीवन-मूल्यों के साथ उसे जोड़ें तो हम पायेंगे कि वह वैयक्तिक जीवन में और सामाजिक जीवन में संघर्षों के निराकरण और समत्व की साधना की बात कहता है। "**प्रश्नव्याकरणसूत्र**" में अहिंसा के साठ नाम दिये हैं। जितने सारे सद्गुण हैं, वे समस्त सद्गुण अहिंसा में समाहित हैं। अहिंसा और अनेकान्त -- ये दो महावीर के धर्म चक्र के दो पहिये हैं, जिनके आधार पर धर्मरूपी रथ आगे बढ़ता है।

मैं अब आपका अधिक समय नहीं लेना चाहूँगा और अन्त में यही कहना चाहूंगा कि अगर महावीर को समझना है तो उन्होंने वैयक्तिक जीवन में जो कठोर साधनाएँ की हैं उनकी ओर देखें, यह देखें कि वासनाओं और विकारों से कैसे लड़े ? यदि सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में उनके जीवन को समझना है तो उनकी वैचारिक उदारता और लोकमंगल की कामना को समझे और जीयें। सम्भवतः तभी हम महावीर को सम्यक् प्रकार से समझ सकेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org